महाराष्ट्र के इन गाँवों की महिलाओं ने बदली गाँव की हवा

धीरे-धीरे ही सही, लेकिन बदलाव की बयार महाराष्ट्र के गांवों में बह रही है। ठाणे के देहना और आसपास के कुछ गांवों में दिवाली के दौरान कुछ दिन रहने का अवसर मिला। एक कार्यक्रम में मुझे वहां कुछ अंगरेजों को ग्रामीण भारतीय अर्थव्यवस्था और संस्कृति पर व्याख्यान देना था। अजूबा पर्वत की तराई में बसा यह गांव पहली झलक में ही रमणीय लगा। खेतों से गुजरते टेढ़े-मेढ़े रास्ते में कहीं मेढक, कहीं सांप या जंगली कीड़े। खपरैल की छतों वाले तिकोने घर। गोबर से लीपे गए आंगन। हर दरवाजे के बाहर मुर्गियां और बकरियां। घास के गट्ठर ढोते मर्द-औरत। हैंडपंप से पानी भरती स्त्रियां। दो घड़े सिर पर, दो हाथों में। एकदम सधी हुई चाल। पानी की कमी के बावजूद परिंदों के लिए छोटे कुंड में पानी।

भारत के दूसरे गांवों की तरह यह गांव भी था, लेकिन बहुत कुछ अलग। कई संस्करण, कई चेहरे। इस गांव में एक स्वयंसेवी संगठन ने एक प्रयोग किया है। उन्होंने हमें और विदेशियों को तंबू में ठहराया। तंबू के बाहर पक्के शौचालय भी बनवाए। लेकिन उनके खाने-नाश्ते की व्यवस्था ग्रामीणों के घरों में की। थोड़ा-सा प्रशिक्षण और साठ वर्षीया मेधा ताई, पचास साल की उषा ताई और उनकी पुत्रवधू रमणी। सब मोर्चा संभालने में लग गए। चार-चार के समूह बना कर देशियों को गांव के चार घरों में भोजन के लिए भेजा गया। हर समूह के साथ एक भारतीय, ताकि संवाद में असुविधा न हो। सभी घरों का आंगन रंगोली से सजा हुआ, बाहर बाल्टी में हाथ धोने के लिए साफ पानी, लाइफबॉय साबुन और चमचम लोटा। आंगन के भीतर दरी बिछी हुई, हलकी बत्ती, मरियल पंखा और छोटी-सी टीवी। सब विदेशियों ने आलथी-पालथी मार कर खाना खाया। दाल-चावल, कम मसाले मिश्रित आलू की सब्जी, अचार और चावल के आटे की रोटियां।

शोधार्थी विदेशियों ने ग्रामीण भारत, यहां की सामूहिक संस्कृति और अतिथि सत्कार को जाना। दिवाली के दिन एक ग्रामवासी की मृत्यु हो गई, तो उसके शोक में पूरे गांव में दिवाली नहीं मनाई गई थी। मिट्टी के चूल्हे में लकड़ी की आग से बनता भोजन। एक विदेशी साथी को अंगुलियों से खाने में दिक्कत हो रही थी। उसने चावल को रोटी के अंदर भरा और रोटी को मोड़ कर दांत से काट कर खाया। अधिकतर विदेशियों ने चावल ज्यादा खाया, रोटी कम। दो ने रोटी तोड़ कर उसे सब्जी के साथ खाना सीखा। मुझे बताया गया कि ऐसे प्रयोग बहुत सफल हो रहे हैं। न सिर्फ हर घर की आमदनी तीस से चालीस प्रतिशत बढ़ रही है, बल्कि यहां की महिलाओं में आत्मविश्वास भी बढ़ रहा है। पर्यटन विकसित कर कमाने की जबर्दस्त चाहत पैदा हो रही है।

इसके अलावा जब से विदेशी आसपास के गांवों में ठहरने लगे हैं, स्थानीय लोग अपने गांव को साफ-सुथरा रखने लगे हैं। लेकिन बदलाव की असली तस्वीर तो अभी बाकी थी। कुछ समय पहले तक गांव में साहूकार सौ रुपए पर महीने का पांच से दस रुपए तक ब्याज लेते थे। कहीं-कहीं हर दिन के लिए एक रुपए का ब्याज। कर्ज के दलदल में फंसी गांव की महिलाओं ने ही इस एनजीओ के निदेशक से अनुरोध किया कि वे उन्हें कमाई के रास्ते सुझाएं। एक-दो बैठकों के बाद यह तय हुआ कि प्रयोग के तौर पर महिलाओं को जैविक खाद के लिए प्रशिक्षित किया जाए। सात-सात महिलाओं का स्वयं सहायता समूह बनाया गया। महिलाओं को बचत करने, अपना बचत कोष बनाने और सबसे बढ़ कर गोबर और केंचुए की सहायता से जैविक खाद तैयार करने का प्रशिक्षण दिया गया।

इसके बाद बहुत कुछ उलट-पुलट हो गया। लग गए ये महिलाएं जीवन का ताना-बाना बुनने में। सपनों ने अंगड़ाई ली। मेहनत और गरीबी से मुठभेड़ करने के दृढ़ संकल्प ने बढ़ते कदमों को लड़खड़ाने नहीं दिया। देखते ही देखते तीन से छह महीने के भीतर ही प्रशिक्षित महिलाओं की पहली खेप तैयार हो गई। नई खेप ने दूसरे समूह को प्रशिक्षित करना शुरू किया और आज अर्जित करने वाले हाथों की एक पूरी फसल इन गांवों में लहलहा उठी है। शुरू में इन महिलाओं को उनकी जैविक खाद के लिए कोई खरीदार नहीं मिला, तो उन्होंने खुद ही अपनी खाद का इस्तेमाल कर लोगों को इससे उगी बेहतर पैदावार दिखाई। धीरे-धीरे आसपास के गांव वाले उनके ग्राहक बने। आज आलम यह है कि महाराष्ट्र के गांवों की मांग के अलावा उत्तर भारत से भी जैविक खाद की मांग इतनी अधिक है कि इनके सपने, इरादों और चाहत को पंख लग चुके हैं। जिन्होंने कभी कोलकाता और दिल्ली का नाम तक नहीं सुना था, वे आज पूरे भारत को नापने का हौसला रखती हैं। याद आए सर्वेश्वर दयाल सक्सेना- 'जब भी भूख से लड़ने कोई खड़ा हो जाता है/ सुंदर दिखने लगता है।' यह गांव भी अब सुंदर लगाने लगा है। जिंदगी यहीं है... बदलती हवाओं में, इन महिलाओं के आत्मविश्वास और इनकी मेहनत में... इनकी उड़ान में।

साभार- http://www.jansatta.com/ से